अन्धा आदमी और खुजली

ईशा सरदेसाई द्वारा पुनर्लिखित

अँधेरे ने उसे निगल लिया था। उसने कुछ बार पलके झपकाईं—परन्तु उसे पता था कि इससे कोई फ़ायदा नहीं होने वाला, इससे उसकी दृष्टि कभी नहीं सुधरेगी। इसके अलावा, उसकी आँखों की जो थोड़ी-बहुत रोशनी बची थी, उसके सहारे वह अच्छी तरह जानता था कि इस कमरे में रोशनी का कोई साधन नहीं है, न कोई दिया है, न ऐसी खिड़की ही है जिससे चाँदनी कमरे में आ सके।

कुछ भी नहीं, वह घने अन्धकार से घिरा था। अन्धकार और—*ख़ामोशी।* बस उसके विचार थे जो उसके सीने में बढ़ने वाली घबराहट से भी अधिक शोर मचा रहे थे। उसका मन इसी उधेड़-बुन में लगा रहा कि वह यहाँ इस अँधेरे कमरे में पहुँचा कैसे जिसमें कोई रोशनदान भी नहीं है और न ही उसकी मदद करने वाला कोई है।

मज़े की बात तो यह थी कि यह ठण्डा और वीरान कमरा एक महल का हिस्सा था। और यह महल *भव्य* था—हवादार, सुन्दर और बिलकुल सटीक रमणीय स्थान पर स्थित जिसके चारों ओर हरियाली से अच्छादित पहाड़ियाँ थीं। उस आदमी ने अपने जीवन में जो भी स्थान देखे थे, यह उनमें से सबसे सुखद, सबसे मनोहारी और सबसे प्रशान्त स्थान था, और यह *उसका* था।

जी हाँ, उसका परिवार कुछ ही महीनों पहले इस महल में रहने आया था और जब से वे सभी यहाँ आए थे, वह आदमी महल के सभी कमरों और गलियारों का मुआइना करने लगा था। समस्या यह थी कि उसे ऐसा अकेले ही करना पसन्द था और वह भी रात में, जब उसकी पहले से ख़राब नज़र और भी कमज़ोर होती थी।

उस रात भी उसने यही किया, सबके सोने के बाद वह दबे पाँव निकल गया। चलते-चलते वह गुनगुनाता रहा, अपनी याददाश्त, अन्तर-प्रेरणा और इमारत की दीवारों पर लगे चिरागदानों को महसूस कर, उनसे जो मदद ले सका, उनके सहारे चलता गया। आख़िरकार वह कई सीढ़ियाँ उतर आया और पहुँच गया तैख़ाने के गलियारे में। उसे लगा कि जिस दिशा की ओर मुँह करके वह खड़ा है, वहाँ खुला दरवाज़ा है। उसे पता नहीं था कि यह दरवाज़ा कहाँ खुलेगा और न ही उसे अन्दर कुछ दिखाई दे रहा था।

“शायद तुम्हें वापस लौट जाना चाहिए,” उसे अपने अन्दर धीमी आवाज़ में एक चेतावनी सुनाई दी। फिर भी वह ज़रा भी नहीं हिला। इस कमरे के बारे में कुछ था—इसका रहस्य, शायद यहाँ कुछ है ऐसी सम्भावना—जिसकी वजह से इसमें जाने से खुद को रोक पाना मुश्किल था। नकारने वाले इन विचारों को दरकिनार कर, वह अन्दर चल दिया।

वह थोड़ा ही आगे बढ़ा था, यह सोचकर कि वह किसी सामान से या फ़र्नीचर से टकराएगा जिससे उसे अन्दाज़ा मिल जाएगा कि वह कहाँ है। पर ऐसा नहीं हुआ और कुछ क्षण बाद उसे एहसास हुआ कि वहाँ सीलन की बदबू आ रही है।

फिर अपने पीछे, कहीं से उसे सुनाई दिया। *टक्*. . .। वह डर गया। निःसन्देह, यह दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ थी।

तो इस तरह वह यहाँ क़ैद हो गया था, अन्धा और अँधेरे में, एक अनजान कमरे में जिसमें से तुरन्त बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। उसने एक गहरी साँस ली, उस डर को कम करने के लिए जो उसके सीने में बढ़ रहा था और अब तो वह उसे गले में महसूस हो रहा था, डर के मारे उसका गला भी सूखने लगा था। भगवान की दया से, उसके विचार कुछ कम हुए ताकि वह ठीक से सोच सके। “एक योजना,” उसे सूझा। “इसी की तो ज़रूरत है मुझे।”

एक दरवाज़ा तो *था ही,* इसका मतलब हुआ कि बाहर निकलने का रास्ता तो था। और यह एक बन्द जगह थी, यानी वह इस दरवाज़े को ढूँढ़ सकता था। स्याह अँधेरे में अपनी बाहें फैलाए वह आगे बढ़ने लगा, टटोलता हुआ, टटोलता हुआ . . .

खट्।

“यह रहा,” इस विचार से उस आदमी को सन्तुष्टि हुई। उसने एक दीवार को छू लिया था। अब तो बस, दीवार को छूते-छूते, ध्यान से एक दिशा में चलते जाना है, जब तक कि वह दरवाज़े तक न पहुँच जाए। देखने में तो यह बड़ा आसान लग रहा था।

वह एक क़दम आगे बढ़ा, और फिर एक और क़दम, एक और . . . और, अगला क़दम, उसकी उँगलियाँ ठण्डे सिमेन्ट को टटोलती जा रही थीं। कमरा बेशक़ बहुत बड़ा था—दीवार ख़त्म ही नहीं हो रही थी। और जब वह आख़िरकार एक कोने में पहुँचा, जहाँ यह दीवार दूसरी दीवार से मिल रही थी, तो अब

उसे यही काम फिर से करना था—दीवार के सहारे चलते रहना। अब वह इस *नई* दीवार को टटोलते हुए, उससे सटकर चलता रहा, इस आशा से कि उसे दरवाज़ा मिल जाएगा।

कुछ देर तक वह इसी तरह चलता रहा। उसे आशा थी—उसे तो पूरा यक़ीन था कि वह दरवाज़े के नज़दीक आ रहा है। अब ज़्यादा देर नहीं है।

और तभी उसे महसूस हुआ कि उसकी नाक में हल्की-सी सुरसुरी होने लगी है। अचानक खुजली होने लगी।

वह अनजाने में अपनी नाक सिकोड़ने लगा, जो हो रहा था उसे नज़रअन्दाज़ करने की कोशिश करने लगा, पर खुजली बढ़ती ही जा रही थी . . . बढ़ती ही जा रही थी . . . और *बढ़ती ही जा रही थी।* खुजली न करने से परेशान होकर उसकी आँखों से पानी निकलने लगा। उसके हाथ अब भी दीवार पर ही थे, पर उसका ध्यान भटक गया था। अभी वह बस एक ही चीज़ के बारे में सोच पा रहा था, वह थी उसकी नाक की खुजली। खुजली की वजह से बेचैनी बढ़ रही थी, उसका पूरा ध्यान उसी पर था; वह कुछ और सोच ही नहीं पा रहा था।

"मुझे खुजलाना ही पड़ेगा!" उस ख़ाली कमरे में वह निराश होकर चिल्लाया।

और अन्त में उसने वही किया। उसने अपने दोनों हाथों को दीवार से हटाया [एक हाथ से काम चल सकता था, पर उस आदमी का मन कुछ सोचने-समझने की स्थिति में था ही नहीं]—और वह अपनी पूरी तसल्ली होने तक अपनी नाक को खुजलाता रहा। साथ-साथ वह चलता भी रहा, बिना यह सोचे कि वह कहाँ जा रहा है।

अपनी नाक को जी भरकर खुजा लेने के बाद उसने चैन की साँस ली, *"आऽऽह"*। उसने अपने हाथ फिर से दीवार पर रखे और खोज फिर से आरम्भ की।

कुछ समय बीता; कितना समय उसे नहीं पता था। उसने ख़ुद से कहा, "बस चलते रहो। समझ लो पहुँच ही गए।"

उसके मन में जैसे ही यह विचार आया, वैसे ही खुजली वापस आ गई। बस इस बार वह उसकी पिण्डली में होने लगी। फिर से उस आदमी ने खुजलाने से ख़ुद को रोकने की कोशिश की, पर जितना वह सहन करता रहा, खुजली उतनी ही आस-पास की त्वचा पर फैलने लगी। जल्द ही, हुआ ऐसा कि न केवल उसकी पिण्डली में, बल्की उसके पूरे पैर में खुजली होने लगी! उसने खुजली रोककर रखने की

पूरी कोशिश की; उसे लगा मानो एक युग बीत गया हो कि वह खुजली रोककर रखने की इस पीड़ा से जूझ रहा था, आख़िरकार उसने हार मान ली। उसने अपने दोनों हाथों को दीवार से हटाया, और नीचे झुककर व्यग्रता से, जल्दी-जल्दी पैर खुजलाने लगा।

अन्ततः जब खुजली मिट गई तब कहीं जाकर वह फिर से खड़ा हो पाया। फिर अपनी मर्ज़ी की एक दिशा चुनकर वह फिर से दीवार टटोलने लगा। उसने सोचा, "इस बार तो मैं दरवाज़ा ढूँढ़कर ही दम लूँगा।"

इस तरह, वह घूमता ही रहा और खुजाता ही रहा। पहले यहाँ खुजली होने लगी। फिर वहाँ होने लगी। इस तरफ़ खुजली होने लगी। उस तरफ़ खुजली होने लगी। *यहाँ खुजली हुई। खुजा लिया। वहाँ खुजली हुई। खुजा लिया।* वह आदमी गोल-गोल घूमता रहा। वह जितना व्याकुल और बेचैन होकर अपने पैरों से पूरे चक्कर लगाता रहा, उसके साथ-साथ अपने मन में भी लगाता रहा।

इस पूरे उपद्रव में, जो कि उसने ख़ुद ही अपने लिए खड़ा कर लिया था, उसे इस बात का एहसास ही नहीं हुआ कि वह दरवाज़े से आगे निकलता जा रहा है। कमरे में चक्कर लगाते-लगाते उसकी उँगलियाँ दरवाज़े के किनारे के लगभग पास ही आ जातीं, और तभी कोई नई खुजली शुरू हो जाती और उसका ध्यान भटक जाता।

बाहर, पहाड़ियों के ऊपर सूर्योदय होने लगा, महल पर गरमाहट और प्रकाश बिखेरने लगा। पर उस आदमी को इस बारे में भी पता नहीं चल सकता था। वह थक गया था। वह पागल-सा हो गया था। वह इस नरक जैसे कमरे में अटक गया था। वह अपने हाथों से बेतुके ढंग से दीवारों को टटोलता रहा, खुजली होने पर खुजाता और अपने आपको घसीटते हुए चलता रहा, पर पहुँचा कहीं भी नहीं।

प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि साधकों को सावधान करते हैं कि वे अपने इन्द्रियों के दास न बनें—कि वे विचारहीन होकर, अपने अन्दर उठने वाली हर कामना के वशीभूत न हों। ऋषि-मुनि कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति की स्थिति खुजली वाले उस अन्धे आदमी से भिन्न नहीं है।

यह कहानी भारत के वेदान्तदर्शन के ग्रन्थों में कथित एक पौराणिक कथा से प्रेरित है।

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।